ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-6* Issue-9* December-2021
Anthology : The Research

काश्मीर शैव दर्शन में वर्णित शिव-समावेश की प्रासंगिकता

Relevance of Shiva-Inclusion Described in Kashmir Shaivism

Paper Submission: 12/12/2021, Date of Acceptance: 22/12/2021, Date of Publication: 23/12/2021

आर.एन. यादव
एसोसिएट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
संत गणिनाथ राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
मुहम्मदाबाद, गोहना, मऊ,
उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश/Abstract

भारतीय दार्शनिक जीवन को अभावों तथा दुःखों से युक्त मानते हैं जिससे छुटकारा पाने के लिए आत्मज्ञान को उचित साधन समझते है अतः भारत में दर्शन का जन्म आध्यात्मिक जीवन की गम्भीरतम समस्याओं को सुलझाने के लिए हुआ। जगत का रहस्य क्या है? इसका निमित एवं उपादान कारण क्या है? जीव क्या है तथा जरा-मरण का प्रयोजन क्या है? इन गुत्थियों को सुलझाना भारतीय दर्शन का मुख्य विषय है तथापि वौद्धिक भेद के कारण दर्शन को वैदिक, अवैदिक तथा अर्धवैदिक या आगमिक नामक तीन शाखाएँ प्रस्फुटित हो गयी। इनमें आगमिक या तान्त्रिक धारा पर आश्रित दर्शनकों शैव दर्शन की संज्ञा प्रदान की गयी। सांख्य दर्शन में वर्षित पचीस तत्त्वों से ग्यारह सोपान अधिक होने के कारण इस दर्शन में 36 (छत्तीस) तत्त्वों की मान्यता है। वेदान्त में जिस प्रकार माया से जगत् की उत्पत्ति मानी गयी है उसी प्रकार इस दर्शन में शिव की स्वातन्त्र्य शक्ति से जगत् आविर्भूत हुआ है। शिव सच्चिदानन्द स्वरूप है किन्तु जीव रूप में अवतरित होने पर वह अपने शिवत्व को भूल जाता है एवं कष्ट की अनुभूति करता हुआ जरा-मरण के चक्कर में फँस जाता है। इस दुःख की निवृत्ति के लिए शैव दर्शन में अनुपाय, शाम्भोपाय, शाक्तोपाय तथा आणवोपाय नामक चार उपायों को सुझाया गया है। विषय विस्तार के कारण इसे शोध पत्र में अनुपाय एवं शाम्भोपाय नामक दो उपायों का उल्लेख है जिससे शिव समावेश की प्राप्ति तथा जरा-मरण से मुक्ति मिलती है।

To live a life suitable for failing because of being badly spoiled can lead to bad luck as well as bad luck in India. What is the secret of the world? What is Comfort Nimit and Upadana? What is a living entity and what is the difference between adolescence and death? Solving these mysteries is the main subject of Indian philosophy, however, due to the intellectual difference, three branches of philosophy emerged, namely Vedic, non-Vedic and Ardhvedic or Agamik. In these, the philosophy dependent on the Agamic or Tantric stream was given the name of Shaivism. Due to the presence of eleven steps more than the twenty-five elements in the Sankhya philosophy, 36 (thirty-six) elements are recognized in this philosophy. Just as the origin of the world is believed to be from Maya in Vedanta, similarly in this philosophy the world has emerged from the freedom power of Shiva. Shiva is the form of Satchidananda, but when he incarnates in the form of a living entity, he forgets his Shiva and, feeling pain, gets entangled in the cycle of death. For the cessation of this misery, four measures namely Anupaya, Shambhopaya, Shaktopaya and Anavopaya have been suggested in Shaivism. Due to the expansion of the subject, it has been mentioned in the research paper two measures named Anupaya and Shambhopaya, due to which the attainment of Shiva's inclusion and freedom from old age and death.

मुख्य शब्द: शैव दर्शन,शैव दर्शन में समावेश,समावेश।
Key words: Shaivism, Inclusion in Shaivism, Inclusion.

प्रस्तावना

वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ मानव अपने लक्ष्य से भटक गया है जिससे समाज में समरसता, स्नेह, करुणा एवं सामञ्जस्य के स्थान पर भेदभाव, द्वेष नैष्ठुर्य तथा एक दूसरे में असहयोग की भावना उत्पन्न हो रही है। फलतः समाज विखण्डित हो रहा है। हिंसा एवं बलात्कार आम घटना हो गयी है। ऐसी स्थिति में शैव दर्शन का ज्ञान तथा शिव समावेश की भावना मानवता के संरक्षण में सहायक है। इस दर्शन में सिद्ध किया गया है कि शिव ही अपनी इच्छा से जीव एवं जगत् का आविर्भाव करता है। वह माया, कला, विद्या, राग, नियति तथा काल नामक षट्कञ्चुकों से अपनी ज्ञान तथा कर्तृत्व शक्ति को अल्प करके जीव रूप में अवतरित है। उपनिषदों में भी "एकोऽहंबहुस्यामः" (अर्थात् अकेला वह अपने को विविधरूपों में विभक्त कर दिया) इसी आशय की पुष्टि वेदान्त दर्शन में की गयी है। जीव का वास्तविक स्वरूप तो शिवमय ही है केवल मलों के आवरण से अपने शिवत्व को भूल गया है। शिवत्व का बोध हो जाने पर उसमें भेद की भावना समाप्त हो जाती है। फलतः जगत् के तथा जगत् के प्राणियों में अपने स्वरूप का साक्षात्कार होने लगता है। शिव समावेश हेतु इस दर्शन में साधकों को उनकी योग्यता के अनुसार अनुपाय, शाम्भवोपाय, शाक्तोपाय तथा आणवोपाय नाम चार उपाय बताए गये हैं।खुली सीमा को नियंत्रित करना तथा भारत द्वारा नेपाली वस्तुओं पर लगाये गये अतिरिक्त कर की समस्या आदि मुद्दों पर वार्ता हुई।

अध्ययन का उद्देश्य

निगम के साथ-साथ प्रवाहित आगमिक धारा की मुख्य शाखा काश्मीर शैव दर्शन अध्यात्मिक प्रेरणाओं से परिपूर्ण तथा दर्शन के मूल विषय रूपी ताले की कुञ्जी है जो ऐसे स्थान पर पड़ी है जिसका पता विरले संस्कृत मनीषियों को ही है। सांसारिक दुःखों से पीड़ित मनुष्य निरन्त सुख एवं शान्ति के अन्वेषण में गतिमान है किन्तु स्थायी निदान प्रादा करने में असफल रहा है। आगम पर आश्रित शैव दर्शन में वर्णित शिव समावेश के उपाय पीड़ित एवं व्यग्र चित्त मानव के लिए संजीवनी तुल्य है। फलतः इस पर प्रकाश
समीचीन है।

समावेश

परमशिव अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति के विलास से जीव के रूप में अवतरित होता है। यथार्थतः वह स्वप्रकाश ही है, किन्तु जीव दशा में अज्ञान की प्रगाढ़ता के साथ-साथ मलों का आवरण इतना बढ़ जाता है कि वह अपनी वास्तविक शिवात्मकता को भूल जाता है। इसी भूले हुए स्वभाव को पहचान लेना या पहचनाने का अभ्यास ही समावेश कहलाता है। अर्थात् जिस अवस्था में जीव अपनी अल्पज्ञता परतन्त्रता तथा अपूर्णता आदि उपाधियों का परित्याग कर सर्वज्ञता स्वतन्त्रता तथा पूर्ण प्रकाशात्मकता को अपने अन्दर समाविष्ट कर लेता है उसे समावेश कहते हैं।[1] इस प्रकार "स एव अहम्" अर्थात् वह (प्रकाशस्वरूप ईश्वर) मैं ही हूँ की अनुभूति ही समावेश है। शैवी साधना के क्रम में समावेश के अलग-अलग उपाय वर्णित हैं, जिनको शक्तिपात की तीव्रता तथा मन्दता के आधार पर अनुपाय, शाम्भवोपाय शाक्तोपाय तथा आणवोपाय के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

1. **मुख्यत्वं कर्तृतायाश्च बोधस्य च चिदात्मनः ।**
   शून्यादौ तदगुणे ज्ञानं तत् समावेशलक्षणम् ॥

अनुपाय

"अनुपाय" जैसा कि नाम से ही विदित है – "न उपाय अनुपाय" अर्थात् तत्पुरूष समास के अन्तर्गत नञ समास है जिसका लक्षण है – "उत्तर – पदार्थ प्रधानः तत्पुरुषः"। अतः उपायरहित होना ही अनुपाय शब्द का अर्थ है। "जयरथ" ने इसका उल्लेख "अनुदरा कन्या" के नाम से किया है – अर्थात् जिस प्रकार कन्या का उदर प्रदेश अत्यन्त कृश (सूक्ष्म) होता है, उसी प्रकार शिव समावेश में उपाय भी इतनी सूक्ष्म है कि उसे अनुपाय संज्ञा देना ही उचित है। यहाँ एक शंका स्वाभाविक है कि यदि शिव समावेश प्राप्ति में कोई उपाय ही नहीं है तो किसी को समावेश ही नहीं प्राप्त होगा, अथवा सभी को समावेश प्राप्त हो जायेगा। यदि किसी को समावेश ही नहीं होगा तो समावेश की कल्पना ही असंगत है और यदि सभी को समावेश प्राप्त हो जायेगा तो जीव की कल्पना ही व्यर्थ है। इस प्रकार दोनों ही दृष्टियों से विकट समस्या उत्पन्न होती है।

इसका निराकरण आचार्य अभिनवगुप्त ने "यदा खलु दृढ़ शक्तिपाता - विद्धः"[2] आदि से किया है। अर्थात् जिन प्राणियों में तीव्र शक्तिपात हो जाता है, उन्हें विना किसी उपाय के ही शिवसमावेश हो जाता है। सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान तथा अनुग्रह नामक पांच कृत्य परमेश्वर की स्वातन्त्रय शक्ति के ही खेल हैं। अनुग्रह प्राप्त प्राणियों में ही शक्तिपात होता है, अतः शक्तिपात भी परमेश्वर की इच्छा के अभाव में असम्भव है। परमेश्वर की यह इच्छाशक्ति सामान्य जनों की इच्छाशक्ति से विलक्षण है क्योंकि पारमेश्वरीय इच्छाशक्ति निष्प्रयोजन होती है। अतः शक्तिपात को भी निष्प्रयोजन ही मानना पड़ेगा और निष्प्रयोजन शक्तिपात से प्राप्त होने वाले समावेश में किसी प्रकार के उपाय की कल्पना असंगत है।

इस सन्दर्भ में आचार्य अभिनवगुप्त स्वयं एक शंका उठाते हैं कि जब तर्क ही योग का उत्तम अंग माना गया है तो इसकी विवेचना कैसे की जायेगी अर्थात् त्याज्य तथा ग्राह्य अथवा हेय तथा उपादेय का निर्णय तर्क[3] से ही किया जाता है और जब यहाँ उपाय हीनहीं है तो तर्क की कल्पना भी व्यर्थ हो जायेगी।

इसका समाधान करते हुए कहते हैं कि प्रत्यभिज्ञा दर्शन में शक्तिपात में ही स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है और स्वरूप प्राप्ति में उपाय का कोई प्रयोजन ही नहीं है जिसके लिए तर्क की कल्पना की जाय। क्योंकि ग्राह्य वस्तु में प्रवृत्ति होती है तथा त्याज्य वस्तु का निषेध अथवा त्याग कर दिया जाता है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन में शक्तिपात से ही स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है और स्वरूप प्राप्ति में उपाय का कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाता, जिसके लिए किसी उपाय की कल्पना की जाय। अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करने के लिए उपाय पर विचार किया जाता है। परमेश्वर तो शाश्वत है, केवल प्रमाण, शास्त्र अथवा गुरू के कथन मात्र[4] कि "तुम ही वह परमेश्वर हो, यह सारा प्रपन्च तुम्हारे अन्दर तुम्हारी ही शक्तियों का प्रतिबिम्ब मात्र है," इस प्रकार से जीव में सुदृढ़ एवं पूर्ण प्रकाशात्मक विचार उत्पन्न हो जाता है और नित्योदित समावेश प्राप्त हो जाता है। इसमें किसी भी प्रकार के स्वरूप की कल्पना नहीं की जा सकती, क्योंकि स्वरूप कल्पना अनित्य पदार्थों में ही सिद्ध है, जैसे – स्वर्ण से आभूषण।

प्रकाशस्वरूप परमेश्वर में मल रूपी आवरण भी नहीं है जिसको दूर करने के लिए किसी उपाय की कल्पना की जाय क्योंकि वह स्वयं प्रकाशमान है। परमेश्वर से भिन्न किसी व्यक्ति या वस्तु की कल्पना भी नहीं की जा सकती, क्योंकि सब कुछ उसी के स्वातन्त्रय का ही विलास है। इस प्रकार जब कोई अन्य अर्थात् परमेश्वर से भिन्न ही नहीं है तो परमेश्वर रूपी स्वरूप से अनुप्रवेश करने का विचार ही असंगत है।

"न तदनुप्रवेशः अनुप्रवेष्टुः व्यतिरिक्तस्य अभावात्"

अतः जो कुछ है वह परमेश्वर रूपी चिन्मात्र तत्व है। इसमें किसी भी प्रकार की परिच्छिन्नता नहीं है। काल, देश या आकृति तथा प्रमाण आदि सभी उसी की इच्छा के फल हैं। षट्कन्चुकों के अन्तर्गत काल भी एक कञ्चुक है जो स्वरूप को वर्तमान भूत तथा भविष्य के रूप में विभाजित कर उसकी अखण्डता को सीमित कर देता है। मूर्ति वैचित्र्य ही देशाध्वा है जो विस्तार तथा न्यूनता की द्योतक है जैसे अभुक वस्तु कम प्रवेश (स्थान) में है तथा अमुक वस्तु अधिक प्रदेश में है। लेकिन परमेश्वर में किसी भी प्रकार के काल तथा देशगत

संकोच का अवसर ही नहीं रहता । ये संकोच मलाविद्ध जीव को ही प्राप्त होते हैं। इसमें किसी भी प्रकार के रूप या आकृति की भी कल्पना नहीं की जा सकती, क्योंकि आकृतियाँ अनित्य होती हैं। जैसे – स्वर्ण से कर्णभूषण इत्यादि बनाये जाते हैं तथा उन्हें नष्ट भी किया जाता है। नष्टोपरान्त दूसरे आभूषण भी बना दिये जाते हैं किन्तु चित् तत्त्व स्वप्रकाशित है तथा सदा विद्यमान रहता है। अतः नित्य पदार्थ के लिए अनित्य पदार्थ की कल्पना करना तथा उसके लिए उपाय सोचना असंगत है।

परमेश्वर की सिद्धि के लिए प्रमाण की भी कोई उपयोगिता नहीं है क्योंकि प्रमाण से अज्ञात वस्तु पर प्रकाश डाला जाता है, किन्तु जो स्वतः पूर्ण प्रकाशित ही है उसके लिए प्रमाण की क्या आवश्यकता है? इस प्रकार स्पष्ट है कि काल से प्रमाण तक सभी विषयों के अवभासक शिव ही हैं। ये काल आदि शिव की चित्स्वरूपता में न तो किसी प्रकार की परिछिन्नता ला सकते हैं न ही प्रमाणादि स्वरूप प्राप्ति में सहायक बन सकते हैं। जिस प्रकार सूर्य को पर – प्रकाशित घट से नहीं प्रकाशित किया जा सकता, उसी प्रकार स्वयं प्रकाश रूप परमतत्त्व को किसी उपाय से नहीं जाना जा सकता है।[6] अतः अपनी परिपूर्णता के विषय में गुरू से एक बार उपदेश पाकर साधक पूर्णानन्दचमत्कार-घन आनन्दशक्ति में उसी प्रकार विश्रान्त हो जाता है, जैसे – एक दीपक के सम्पर्क से दूसरा दीपक जलकर उसके प्रकाश में विलीन हो जाता है।

इस प्रकार तीव्र शक्तिपात प्राप्त साधकों के लिए मन्त्र, जप, ध्यान तथा प्राणायाम आदि योगाभ्यासों के कल्पना की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

1. **उपायजालं न शिवं प्रकाशयेत् ।**
   घटेन किं भाति सहस्रदीधितिः । ।

शैव दर्शन की मुक्ति प्रक्रिया अथवा शिवमय होने का यह मार्ग वेदान्त के महावाक्यों से अत्यन्त साम्यता रखता है। 'तत्वमसि'[7] महावाक्य से जब गुरू शिष्य को उपदेशित करता है कि माया शक्ति से जगत् रूप में अवभासित होने वाला ब्रह्म 'तू ही है', तो साधक शिष्य में अज्ञान का अवरोध दूर हो जाता है। फलतः उसे अनुभूति होती है कि 'अहं ब्रह्मास्मि'[8]। अर्थात् वह ब्रह्म मैं ही हूँ। जिस प्रकार अंधेरे में पड़ी हुई रस्सी साँप के रूप में दिखाई पड़ती है किन्तु प्रकाश में उसका वास्तविक स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। उसी प्रकार अज्ञान के कारण ब्रह्म विश्व के रूप में अवभासित होता है किन्तु ज्ञान होने पर ब्रह्ममय हो जाता है। वेदान्त दर्शन में इसे विवर्त कहा गया है। जो व्यवहारिक नहीं प्रतीत होता है क्योंकि 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' कि भावना युक्ति संगत नहीं लगती। शैव दर्शन में जगत् का आविर्भाव शिव की स्वातन्त्र्य शक्ति के विलास से माना गया है। यहाँ जगत् की सत्ता को वास्तविक माना गया है न कि मिथ्या। प्रत्यक्ष दृष्ट जगत् की सत्ता को मिथ्या नहीं कहा जा सकता। अतः शैव दर्शन का यह सिद्धान्त युक्ति संगत है।

शाम्भवोपाय

तीव्र शक्तिपात प्राप्त आनन्दयोग पर स्थित साधकों से कुछ नीचे स्तर वाले योगी शाम्भवयोग से उपदिष्ट हैं। अनुपाय में वर्णित अखण्डमण्डल स्वरूप में साक्षात् रूप से प्रवेश न पाने वाले साधक स्वातन्त्रय शक्ति को ही मुख्य समझने लगते हैं। विषय स्पष्टार्थ स्वातन्त्र्य शक्ति का थोड़ा सा विवेचन अनावश्यक नहीं होगा।

परमात्मा की इच्छा का अनभिहत प्रसार उसका स्वातन्त्र्य है।

"स्वातन्त्र्यं च नाम यथेच्छं तत्रेच्छा प्रसरस्य अविघातः "[9]

यही स्वातन्त्र्य ही परमात्मा की परा शक्ति है जिसे विमर्शात्मा चिति के नाम से जाना जाता है। चिद्रूपता का स्वभाव आनन्द है। पूरी सृष्टि इसी आनन्द की स्पन्द मात्र है। लौकिक जीवन में भी आनन्द की अनुभूति होने पर एक विशेष प्रकार की संवेदना या हलचल उत्पन्न होती है। यही आनन्द रूपी संवेदना जब परमशिव में होती है तो छत्तीस तत्त्वों से युक्त प्रपञ्च की सृष्टि हो जाती है।

यही कारण है कि परमेश्वर से सृष्टि की उत्पत्ति होने पर उसकी पूर्णता या परमेश्वरता का बोध होता है तथा उसकी प्रकाशमानता में कोई अन्तर नहीं आता। अन्य दर्शनों में कारण से कार्य की उत्पत्ति होने पर कारण का स्वरूप बदल जाता है। जैसे – तिलों से तेल की उत्पत्ति होने पर तिल की सत्ता नष्ट हो जाती है, जबकि परमेश्वर जब जीव एवं जगत् के रूप प्रकट होता है तो उसकी सत्ता पूर्ववत् ही रहती है। अर्थात् सृष्टि परमेश्वर का परिणाम नहीं अपितु स्वातन्त्र्य है। इस सृष्टि के लिए अद्वैत वेदान्त की अनादि अविद्यारूपी माया अथवा साङ्ख्यदर्शन के अनादि प्रकृति जैसे किसी उपादन कारण की आवश्यकता नहीं पड़ती।

इस प्रकार स्वातन्त्र्य शक्ति पूर्ण प्रकाश परमेश्वर की निस्पृह इच्छा शक्ति है। यही शक्ति ही विश्व के रूप में प्रतिबिम्बित है। आचार्य अभिनवगुप्त प्रतिबिम्ब का लक्षण इस प्रकार दिये हैं –

"यत् भेदेन भासितं अशक्तं अन्य व्यामिश्रत्वेनैव भाति तत् प्रतिबिम्बम्"।[10]

अर्थात् जो वस्तु से या बिम्ब से भिन्नहोकर भासित होने में असमर्थ हो, अपितु अन्य के व्यामिश्रण से ही भासित हो उसे प्रतिबिम्ब कहते हैं। उदाहरणार्थ – रूप का प्रतिबिम्ब स्वच्छ दर्पण, आँखे तथा स्वच्छ जल इत्यादि ग्रहण करते हैं। यह प्रतिबिम्ब मुख आदि बिम्ब से अभिन्न होकर ही भासाता है भिन्न होकर नहीं क्योंकि प्रतिबिम्ब बिम्ब पर ही आधारित होता है। बिम्ब के बदल जाने पर प्रतिबिम्ब भी परिवर्तित हो जाता है। प्रतिबिम्ब स्वतः भी नहीं प्रकाशित हो सकता, क्योंकि बिम्ब के अतिरिक्त प्रतिबिम्ब की कोई सत्ता ही नहीं इसीलिए अशक्त कहा गया है।

सभी वस्तुओं के प्रतिबिम्ब को सभी वस्तुएँ नहीं ग्रहण कर सकती बल्कि भिन्न – भिन्न वस्तुओं के प्रतिबिम्ब भिन्न –भिन्न वस्तुएँ ही ग्रहण कर सकती है। जैसे आकाश ही शब्द का प्रतिबिम्ब ग्रहण कर सकता है, दर्पण ही मुख का प्रतिबिम्ब ग्रहण कर सकता है। इस प्रकार सभी वस्तुओं का प्रतिबिम्ब एक ही वस्तु न धारण कर अलग-अलग वस्तुएँ धारण करती हैं। इसी दृष्टि से अवलोकन करने पर यह सिद्ध होता है, कि शब्द, रूप, रस, गन्ध तथा स्पर्श सभी प्रतिबिम्बित होकर ही अवभासित हैं। इनके बिम्ब इनसे अतिरिक्त न

होकर इन्हीं से मिश्रित हैं। अतः इन प्रतिबिम्बों को अर्थात् प्रतिबिम्ब रूप में दृष्टिगत रूप, रस तथा गन्ध आदि को मुख्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि ये सब उपाधि के बल से भासित हैं। अनन्त किरणों से युक्त सूर्य जल प्रतिबिम्बित होकर नेत्रों को आनन्ददायी लगता है। यह सूर्य जल में स्थित सूर्य रूपी प्रतिबिम्ब से मिश्रित होकर भासता है क्योंकि सूर्य के प्रकाश से अलग हुए जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब तिरोहित हो जाता है। इससे सिद्ध होता है कि प्रतिबिम्ब बिनो बिम्ब के मिश्रण के नहीं भासता। यही कारण है कि आचार्य अभिवनगुप्त ने प्रतिबिम्ब के लक्षण में "अन्य-व्यामिश्रत्वेनैव" नामक शब्द का उल्लेख किया।

डॉ0 परमहंस मिश्र प्रतिबिम्ब के लक्षण की व्याख्या करते समय कहते हैं कि "जो भेद से भासित हो, अशक्त हो तथा अन्य व्यामिश्रण से भासित हो, वह प्रतिबिम्ब है।"[11] इसी क्रम में प्रतिबिम्ब को भ्रमपूर्ण बतलाते हैं, जबकि हेमेन्द्रनाथ चक्रवर्ती कहते हैं "जो वस्तु से भिन्न होकर भासिति होने में समर्थ नहीं है अपितु दूसरे के साथ मिश्रित होकर भासता है वही प्रतिबिम्ब है।[12]" मेरे विचार से प्रतिबिम्ब को भ्रमपूर्ण बतलाना संगत नहीं क्योंकि यदि प्रतिबिम्ब भ्रम ही होगा तो अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति के महिमा से अपने ही स्वरूप की भित्ति पर अपनी शक्तियों से प्रतिबिम्बित परमशिव भी भ्रमपूर्ण हो जायेगा। लेकिन शैवदर्शन में जगत् तथा जगत् में उपस्थित जीव को परमेश्वरमय ही माना गया है, परमेश्वर से भिन्न नहीं। यदि हम विश्व को परमेश्वर से भिन्न या भ्रम मान लें तो वे सारे दोष उपस्थित हो जायेंगे, जिनके भय से अद्वैत वेदान्ती ब्रह्म को निराकार प्रकाश स्वरूप ही मानते हुए जगत् को रज्जू में सर्प की भाँति मिथ्या समझते हैं तथा ब्रह्म में किसी भी प्रकार की उपाधि को लगाने से उसकी पूर्णता का ह्रास मानते हैं।

दूसरे शाम्भवयोग में प्रतिबिम्ब के माध्यम से जिस जगत् तथा परमशिव में अभेद ज्ञान का निरूपण हुआ है उसके अन्वय की भी अनुपपत्ति होगी। स्वातन्त्र्यशक्ति की महिमा ही विश्व है। विश्व में उपस्थित शब्द, रूप, रस तथा गन्ध प्रतिबिम्बित होकर भासित है। इनके प्रतिबिम्ब से अभिन्न हुआ बिम्ब है। यही कारण है कि प्रतिबिम्ब के ज्ञान होने पर भी बिम्ब का ज्ञान किया जा सकता है जिस प्रकार स्वातन्त्र्य शक्ति के ज्ञान से परमशिव का ज्ञान होता है।

अतः प्रतिबिम्ब के बिम्ब से भिन्न मानने पर स्वातन्त्र्य शक्ति के रूप में प्रतिबिम्बिता परमशिव को भी भिन्न मानना होगा तथा जिस स्वातन्त्र्य शक्ति से साधक परमशिव में समावेश चाहता है, उसकी साधना भी व्यर्थ हो जायगी। अतः हेमेन्द्र नाथ चक्रवर्ती का मत युक्तिसंगत है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रतिबिम्ब भ्रमपूर्ण नहीं अपितु बिम्ब से मिश्रित होकर ही भासता है तथा इस प्रतिबिम्ब के ज्ञान से बिम्ब का भी ज्ञान किया जा सकता है। अब यहाँ शंका हो सकती है कि विश्वरुपी प्रतिबिम्ब के ज्ञान में बिम्ब क्या हो सकता है। इसका उत्तर आचार्य अभिनवगुप्त ने इस प्रकार दिया है –

निर्मल मुकुरे यद्वत भान्ति भूमिजलादयः ।
अमिश्रास्तदेकस्मिन् चिन्नाथे विश्ववृत्तयः ॥[13]

अर्थात् निर्मल दर्पण में समस्त भूमि जल आदि पदार्थ जैसे प्रतिबिम्बित होते हैं, उसी प्रकार बोधरूपी शिव में समस्त विश्ववृत्तियाँ प्रतिबिम्बित हैं। परमेश्वर अपनी स्वातन्त्रय – शक्ति की महिमा से अपने बोध रूपी दर्पण में अपनी ही अनन्त शक्तियों को प्रतिबिम्बित करता है। लौकिक दर्पण में प्रतिबिम्ब के लिए बिम्ब की आवश्यकता पड़ती है अर्थात् एक तो दर्पण की सत्ता है दूसरे बिम्ब की किन्तु बोधरूपी दर्पण स्वतः प्रकाशित है, इसमें प्रकाश तथा विमर्श का स्फुरण है। दर्पण के अन्दर प्रतिबिम्बित वृत्तियों का आभास दर्पण को नहीं होता लेकिन बोध रूपी दर्पण, जो संवित् स्वरूप है उसे अपने प्रकाश का ज्ञान रहने के साथ – साथ अपनी प्रकाशमानता का विमर्श भी होता है। यहाँ शंका हो सकती है कि ऐसा क्यों होता है?

इसका उत्तर है कि परमेश्वर ही बोधरूपी गगन है तथा उसकी स्वातन्त्र्य शक्तिही विश्ववृत्ति के रूप में प्रतिबिम्बित है। स्वातन्त्र्य शक्ति परमेश्वर में अलग नहीं अपितु उसी की चित् रूपता या आनन्द का उच्छलन है। अतः परमेश्वर की पराशक्ति ही स्वातन्त्र्य है तथा स्वातन्त्र्य शक्ति ही उसकी प्रकाशरूपी भित्ति पर विश्व के रूप में प्रतिबिम्बित है।

यही कारण है कि शैव दर्शन में जड़ पदार्थों को भी प्रकाश एवं विमर्श से युक्त संवित् स्वरूप ही माना गया है। किसी भी जड़ पदार्थ का ज्ञान तब ही सम्भव है जब वह चेतन प्राणी के संवित् में आभासित हो, अर्थात् चेतन में संवित् में आभासित होता हुआ जड़ पदार्थ भी आभास क्षण में चेतन ही होता है। संवित् ही जड़पदार्थाकार रूप धारण करती हुई उसे (पदार्थ को) प्रकाशित करती है। जबतक संवित् पदार्थ रूप को नहीं धारण करती तब तक उस पदार्थ का ज्ञान नहीं होता। इसका विशद विवेचन आचार्य बलजिन्नाथ पण्डित "काश्मीर शैव दर्शन" में स्वातन्त्र्य सिद्धान्त[4] के प्रसंग में किये हैं।

अतः प्रपञ्च के रूप में प्रतिबिम्बिता स्वातन्त्र्य शक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य बिम्ब की सत्ता नहीं है। प्रतिबिम्ब बिम्ब से उलटा दिखायी पड़ता है। अर्थात् उसमें बायाँ दायाँ तथा दायाँ बायाँ के रूप में दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि शक्तियों के प्रतिबिम्बों का दर्शन शक्ति तत्त्व से न होकर पृथ्वी तत्त्व से होता है तथा इसी क्रम से शक्ति तत्त्व तक पहुँचता है। बीच के वर्ण जल से लेकर सदाशिव तत्त्व के रूप में प्रकाशित होते हैं।

शाम्भव योग में योगी अपने आपको, इन शक्तियों को तथा इनके प्रतिबिम्बों को एक साथ समाहित कर लेता है। इस क्रम को मातृका कहते हैं।

इसमें वर्णमाला अक्षुब्धावस्था में होती है। इन वर्णों का अभ्यास व्युत्क्रम से भी किया जाता है। इस क्रम में अभ्यास "न" से आरम्भ होकर "फ" पर समाप्त हो जाता है तथा बीच के वर्ण व्युत्क्रम से ही आते हैं। इसमें वर्णमाला क्षुब्धावस्था में होती है इस क्रम को मालिनी कहते हैं। मातृका तथा मालिनी के अभ्यास से

साधक को अपनी शक्तियों तथा उनके प्रतिबिम्बों की अभिव्यक्ति होने से बिना चिन्तन तथा मनन के इच्छा शक्ति के प्रयोग मात्र से ही शिव समावेश हो जाता है।

आत्म ज्योति स्वतः प्रकाशित है किन्तु चित्त के नाना प्रकार के विकल्प इस ज्योति को तिरोहित किये रहते हैं। जिस प्रकार सर्वथा निर्मल स्फटिक नील-पीतादि के प्रभाव के नील-पीतादि ही आभासित होती है किन्तु इन नील-पीतादि प्रतिबिम्बों के दूर हो जाने पर स्फटिक पुनः अपने निर्मल रूप में प्रकट हो जाती है, इसी प्रकार चित्त के विकल्पों के निस्तारण हेतु मन, प्राण तथा बुद्धि आदि से होने वाली क्रियाओं का परित्याग करके चित्त को निश्चल बनाने का अभ्यास किया जाता है। इसी अभ्यास की परपक्व दशा ही शाम्भोपाय कहलाती है।[15] "साक्षादुपायेनेति शाम्भवेन। तदेव ह्यवहितं पर ज्ञानावाप्तौ निमित्तम् स एव परां काष्ठां प्राप्तश्चानुपाय इत्युच्यते"। चित्त के विकल्पों के दूर हो जाने पर धीरे-धीरे चित्त का भी लय हो जाता है। अर्थात् आत्मसाक्षात्कार हो जाने पर साक्षात्कार्ता, साक्षात्कार्य और साक्षात्कार एक हो जाते हैं। इसी शाम्भव योग का वर्ण भगवदगीता में इस प्रकार किया गया है[6] –

"तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्यश्चाधिको मतः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद् योगी भवार्जुन । ।"

निष्कर्ष

जरा मरण रूपी दुःखाग्नि को शमन करने के लिए शिव समावेश शीतल जल तुल्य है। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष नामक चार पुरुषार्थ में मुक्ति ही मनीषियों का परम प्राप्तव्य लक्ष्य है। अन्य दर्शनों में मुक्ति के साधन अत्यन्त दुष्कर हैं। इनकी साधना पद्धति जन्म – जन्मान्तर तक चलने वाली है जिससे दीर्घकालीन एवं कष्ट प्रद है किन्तु शैव दर्शन की साधना पद्धति सुकर एवं व्यावहारिक है। शिव ही अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति से जीव रूप में अवतरित होता है। सम्पूर्ण सृष्टि उसकी इसी शक्ति का विलास है। माया, कला, विद्या, राग, नियति एवं काल नामक षट्कञ्चुकों के आवरण से जीव अपने शिवत्व को भूल जाता है किन्तु वह शिव समावेश की इच्छा रखने वाले साधकों पर अपने अनुग्रह रूपी शक्तिपात से मलावरण को दूर कर देता है। जिससे जीव अपने वास्तविक रूप को पहचान लेता है। उसे बोध हो जाता है कि "शिवोऽहम्" अर्थात् वह शिव मैं ही हूँ। स्वरूप की पहचान के लिए शैव दर्शन में शक्तिपात की तीव्रता एवं मन्दता के आधार पर अनुपाय शाम्भोपाय, शाक्तोपाय तथा आणवोपाय नामक चार उपाय वर्णित है। इन उपायों से मनुष्य परिवार एवं समाज के रहते हुए एवं अपने दायित्वों का निर्वहन करते हुए जीवन के चरम लक्ष्य अर्थात् शिवत्व को प्राप्त कर लेता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *ईश्वर प्रत्यभिज्ञा 3-2-12*
2. *तन्त्रालोक आह्निक 2, पृ0 09*
3. *तन्त्रसार 2, पृ0 09*
4. *प्राणायामः तथा ध्यान प्रत्याहारोऽथधारणा ।*
   तर्कश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते ॥ - तन्त्रालोक आह्निक 4/15
5. *एकबारं प्रमाणेन शास्त्राद्वा गुरूवाक्यतः । - शिवदृष्टि 7/5*
6. *तन्त्रसार2 पृ09*
7. *छान्दोग्योपनिषद 6/8/7*
8. *वृहदारण्यकोपनिषद*
9. *ईश्वर प्रत्यभिज्ञा-विमर्शिनी 1/1*
10. *तन्त्रसार पृ0 12*
11. *तन्त्रसार 3*
12. *तन्त्रसार पृ0 15*
13. *तन्त्रालोक आह्निक - 2/4*
14. *काश्मीर शैव दर्शन पृ0 56 वलजिन्नाथ पण्डित।*
15. *तन्त्रालोक विवेक – 1/142*
16. *भगवदगीता 6/46*